मौद्रिक नीति : दिशा निर्धारक मुख्य कारक*

ऊर्जा का आयात करने वाली चीन और भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं की मौद्रिक नीतियां तेल के वैश्विक मूल्य के उतार-चढ़ाव से तब तक प्रभावित रहेंगी जब तक तेल ऊर्जा का वृद्धिशील मुख्य स्रोत बना रहेगा।

मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य भविष्य में भी वैसे ही बने रहेंगे जैसे पहले थे। मौद्रिक नीति का प्राथमिक उद्देश्य मुद्रास्फीति को कम और स्थिर बनाए रखना है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को कम और स्थिर रखते हुए वृद्धि को अधिकतम बनाए रखना होगा।

मौद्रिक नीति के उद्देश्य के संदर्भ समय के साथ बदलते रहते हैं। मेरे विचार से भारत के लिए वर्तमान संदर्भ में तीन घटक प्रमुख हैं जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और जिनका प्रभाव मौद्रिक रुझान एवं मौद्रिक संप्रेषण प्रक्रिया की क्षमता -दोनों पर पड़ता है।

गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर

भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति दबाव बढ़ाए बिना अधिकतम दर से जितनी वृद्धि की जा सके यह पहला महत्त्वपूर्ण घटक है। यह मान्यता मौद्रिक अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। इसे अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर क्षमता का विशिष्ट नाम दिया गया है।

यह अवधारणा बहुत सरल है। यदि अर्थव्यवस्था अपनी क्षमता से ज्यादा वृद्धि करे तो उसकी क्षमता एवं संसाधनों पर दबाव पड़ता है। उत्पादकों के लिए बढ़ी हुई मांग के नाम पर वस्तुओं के दाम बढ़ाना तथा कामगारों के लिए सेवाओं के दाम बढ़वाना अपेक्षाकृत आसान होता है। व्यापक मूल्य वृद्धि से सामान्यतः मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ता है।

दूसरी ओर, यदि अर्थव्यवस्था अपनी क्षमता से कम वृद्धि करे तो संसाधन बेकार पड़े रहते हैं। इससे कामगारों के लिए मजदूरी बढ़ाना और उत्पादकों के लिए वस्तुओं के मूल्य बढ़ाना ज्यादा मुश्किल हो जाता है। अर्थव्यवस्था में अंतर्निहित क्षमता के अनुसार वृद्धि होने तक मुद्रास्फीति कम रहेगी।

इस प्रकार से मौद्रिक नीति के लिए ऐसे रुख को बनाए रखने की चुनौती होती है जो अर्थव्यवस्था को यथा संभव क्षमता के अनुरूप वृद्धि दर के करीब रखे। तेज वृद्धि से मुद्रास्फीति के बढ़ने का जोखिम होता है और वृद्धि धीमी होने से विकास को व्यर्थ ही कुर्बान किया जाता है।

क्या हमें भारत की गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर पता है ? हाल ही में वृद्धि की कितनी दर से मुद्रास्फीति का दबाव काफी बढ़ा है ?

पिछले दो दशकों पर दृष्टिपात करने पर हमें ऐसे तीन सुस्पष्ट समय देखने को मिले जब वृद्धि दर में बढ़ोतरी के साथ मुद्रास्फीति में भी वृद्धि हुई (चार्ट 1 देखें)। 1990 के मध्य का वह पहला समय था जब 7 प्रतिशत से कुछ अधिक वृद्धि से तीन वर्षों की अवधि में मुद्रास्फीति में तीव्र वृद्धि हुई। दूसरा समय संकट से पहले की उच्च वृद्धि का पांच वर्षों वह काल था जिस दौरान इसके मध्य की अवधि की औसत मुद्रास्फीति लगभग 8.5 प्रतिशत थी। तीसरा समय संकट के बाद का वह समय था जब 2008-09 के संकट के सबसे खराब समय की 6.8 प्रतिशत की वृद्धि के आगामी वर्ष में बढ़कर 8 प्रतिशत होने तक मुद्रास्फीति में भी वृद्धि हुई।

इन तीन घटनाओं से भविष्य की मौद्रिक नीति के लिए दो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर लंबे समय तक स्थिर नहीं रहती। इसमें अपेक्षाकृत कम समय में परिवर्तन हो सकते हैं जैसा कि पहली और दूसरी घटनाओं के बीच के एक दशक से भी कम समय में इसमें 7 प्रतिशत से 8.5 प्रतिशत तक परिवर्तन हुआ।

महत्त्वपूर्ण रूप से संकट से बाहर निकलने के दौरान जब वृद्धि दर 2008-09 के 6.7 प्रतिशत की निम्न दर से बढ़कर 2009-10 में 8 प्रतिशत हुई और उसके बाद वर्तमान 2010-11 में 8.5 प्रतिशत होने का अनुमान है तब मुद्रास्फीति दबाव शीघ्र ही काफी बढ़ गया। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गैर-मुद्रास्फीतिकारी विकास दर 8 प्रतिशत के करीब है।

दूसरा, ऐसा प्रतीत होता है कि गैर-मुद्रास्फीतिकारी विकास दर जब 7 प्रतिशत से बढ़कर 8.5 प्रतिशत हो गई तो निवेश-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात में तीव्र वृद्धि हुई एवं राजकोषीय घाटा-सकल घरेलू उत्पाद अनुपात में लगातार कमी आई।

यहां उल्लिखित पहले अनुपात से पता चलता है कि जब अर्थव्यवस्था में नई क्षमता का सृजन किया जाता है तो मुद्रास्फीति को और बढ़ाए बिना इसके तेजी से बढ़ने की क्षमता में वृद्धि होती है। दूसरे अनुपात से पता चलता है कि एक निर्दिष्ट वृद्धि दर हासिल करने के लिए खर्च की संरचना भी महत्त्वपूर्ण होती है।

* डॉ. सुबीर गोकर्ण, उप गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक का www.livemint.com में 22 सितंबर, 2011 को प्रकाशित लेख।

चार्ट 1: वृद्धि एवं मुद्रास्फीति

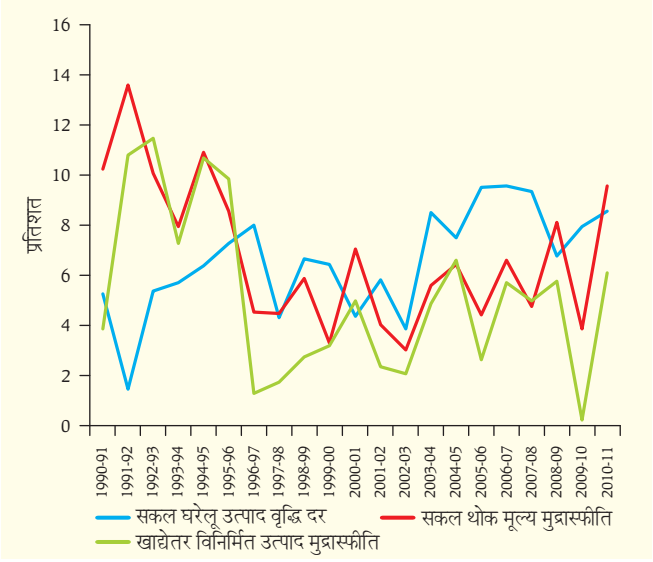

चार्ट 2: कच्चा तेल

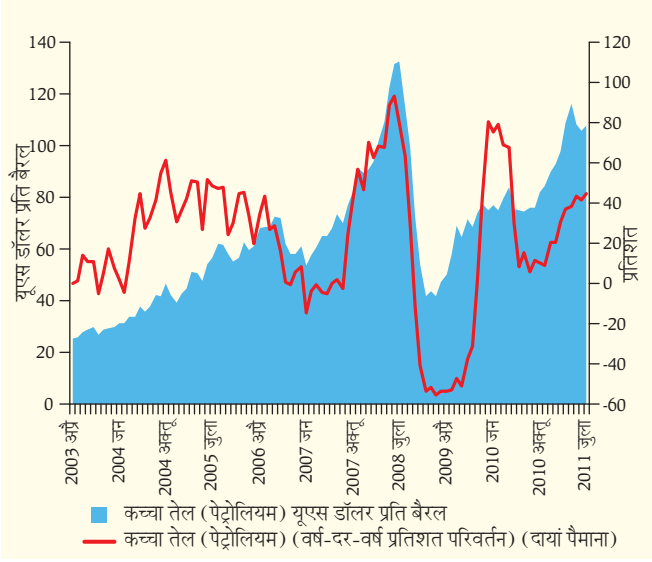

ऐसा प्रतीत होता है कि कम सरकारी उधार का संबंध बढ़ती गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर से है, शायद इसलिए कि इससे निवेश की गुंजाइश बढ़ जाती है। बेशक इन संबंधों का और अधिक विश्लेषण किया जाना चाहिए किंतु इनसे यह अवश्य पता चलता है कि गैर-मुद्रास्फीतिकारी विकास दर का आकलन करते समय मौद्रिक नीति को व्यय की समग्र संरचना का ध्यान रखना पड़ेगा जिसका नीति रुझानों पर प्रभाव पड़ेगा।

ऊर्जा मूल्यों का प्रभाव

ऊर्जा का आयात करने वाली चीन और भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं की मौद्रिक नीतियां तेल के वैश्विक मूल्य के उतार-चढ़ाव से तब तक प्रभावित रहेंगी जब तक तेल ऊर्जा का वृद्धिशील मुख्य स्रोत बना रहता है। यही तर्क अन्य महत्त्वपूर्ण पण्यों पर भी लागू होता है किंतु ऊर्जा के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटक होने की संभावना है। इसलिए मैं इस पर ध्यान केंद्रित करूंगा।

चार्ट 2 में यह दिखाया गया है कि घरेलू मुद्रास्फीति की दृष्टि से ऊर्जा के मूल्य और उनके बढ़ने की दरों का महत्त्व कितना है। संकट से पहले के अर्थव्यवस्था की उच्च वृद्धि दर वाले दौर में कच्चे तेल के मूल्य बढ़ रहे थे, परंतु उनके बढ़ने की दर तुलनात्मक दृष्टि से धीमी थी।

जैसा कि पहले के विचार-विमर्श में हमने देखा, इस अवधि में घरेलू मुद्रास्फीति तुलनात्मक रूप से कम थी। संकट के ठीक पहले ऊर्जा मूल्यों में तीव्र वृद्धि हुई जिससे घरेलू मुद्रास्फीति का स्तर उच्च हो गया। संकट के दौरान ऊर्जा मूल्यों के कम होने से पहले घरेलू मुद्रास्फीति में तीव्र कमी हुई।

तेल का मूल्य निम्न स्तर से काफी मजबूती से उबर गया फिर भी अक्तूबर 2010 तक इसका मूल्य 80 यूएस डॉलर प्रति बैरल से नीचे था। परंतु नवंबर के आगे से, अपेक्षाकृत उच्च आधार की तुलना में हुई लगभग 30 प्रतिशत की वर्ष-दर-वर्ष वृद्धि ने वर्तमान वर्ष के दौरान मुद्रास्फीति को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

जैसा कि विगत कुछ वर्षों के अनुभव से पता चलता है, वर्तमान स्थिति में भारत की घरेलू समष्टि आर्थिक स्थिति पर उच्च एवं बढ़ते ऊर्जा मूल्यों का जोरदार प्रभाव रहा है। अगर वे बढ़ते रहे तो गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर पर उनका नकारात्मक प्रभाव होगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति को निर्धारित दर पर बनाए रखने के लिए वृद्धि दर में कमी करना पड़ सकता है।

ऊर्जा मूल्यों में वृद्धि नहीं भी हो तो उच्च मूल्यों का निवेशों की लाभप्रदता में सभी स्तरों पर प्रभाव पड़ेगा। निवेश में कमी हो सकती है जिससे गैर मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर में और कमी आ सकती है।

इस परिदृश्य का मौद्रिक नीति पर सीधा प्रभाव होता है।

जब अर्थव्यवस्था गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर पर हो या उसके करीब हो, तब ऊर्जा मूल्यों में वृद्धि से मुद्रास्फीति दबाव उत्पन्न हो सकता है क्योंकि वहां पर क्षमता का उपयोग अधिक है और उत्पादक उच्चतर ऊर्जा मूल्यों को आसानी से उनके उपभोक्ताओं पर अंतरित सकते हैं।

भारत की वर्तमान नीति विषयक परिचर्चा में यह सामान्य तर्क है कि आपूर्ति की कमी के कारण ऊर्जा मूल्य बढ़ रहे हैं। इसलिए मौद्रिक

नीति को जो कि मांग के प्रभाव के माध्यम से कार्य करती है, इस पर हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस बात पर अवश्य जोर दिया जाना चाहिए कि यह तर्क तभी मान्य हो सकता है जब आपूर्ति का असर क्षणिक हो या अस्थाई प्रकृति का हो। यदि इसका प्रभाव जल्दी समाप्त होने वाला हो तो इस पर मौद्रिक नीति के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

यद्यपि ऐसे प्रभाव जो लंबे समय तक बने रहें और जो महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के मूल्यों को नई ऊँचाई पर ले जाएं और वहीं बरकरार रखें तब मौद्रिक नीति का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

वस्तुतः पहले के तर्क की ओर लौटते हुए, उर्जा के उच्च तथा बढ़ते मूल्य से गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर में गिरावट आ सकती है और यदि मुद्रास्फीति को नियंत्रण से बाहर जाने से रोकना हो तो इस बात को स्वीकार करना एवं तदनुसार कार्रवाई करना जरूरी है।

खाद्य मूल्यों का प्रभाव

वर्षों के अनुभव ने हमें यह मानने के लिए प्रेरित किया है कि खाद्य मुद्रास्फीति एक विशिष्ट अस्थायी घटना है जो मानसून के अच्छे या खराब होने पर निर्भर करती है। यह धारणा सही नहीं है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों के आंकड़ों से सुस्पष्ट रूप से पता चलता है कि कुछ वर्षों में ठीक-ठाक मानसून रहने पर भी खाद्य मुद्रास्फीति बनी रही है।

भारतीय परिवारों में आहार के रूप में मुख्य रूप से अनाजों के स्थान पर दालों, दूध, अंडे, मांस एवं मछली तथा सब्जियों और फलों जैसे प्रोटीन के स्रातों का प्रयोग किया जाना इसका सामान्य कारण है। चार्ट 3 में प्रोटीन वस्तुओं की तीव्र मूल्य वृद्धि की प्रवृत्ति को बहुत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है।

लाखों परिवारों के आय स्तर में बनी रहने वाली वृद्धि के कारण मोबाइल फोनों, टेलीविजन सेटों, एयर कंडीशनरों, मोटरसाइकिलों एवं अन्य उत्पादों के उपभोग की भारी धूम रही है। अपेक्षाकृत कम आय स्तर में खाद्य पर भी ऐसा नहीं होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता है।

वस्तुतः राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2009-10 में किए गए सर्वेक्षण के आधार पर हाल ही में प्रकाशित *उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण* से पता चलता है कि अनाजों से प्रोटीन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का परिवारों के खाद्य बजट में कितना महत्त्व रहा है।

देश में 1960 के दशक के अंत और 1970 के दशक के प्रारंभ में 'हरित क्रांति' आई। इस दौरान मांग पूरी करने के लिए अनाजों के

चार्ट 3: प्राथमिक खाद्य मूल्य की प्रवृत्ति

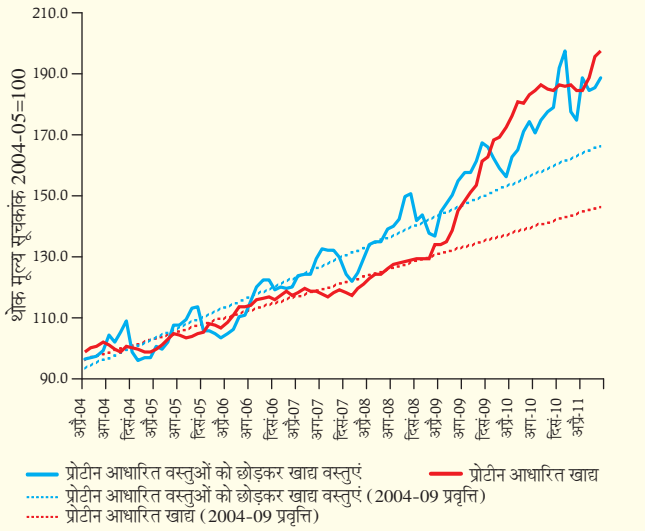

उत्पादन में चमत्कारी वृद्धि हुई। विकास की इस अवस्था में मांग तेजी से बढ़ी किंतु प्रोटीनों, सब्जियों एवं फलों की आपूर्ति में उतनी तेजी से वृद्धि नहीं होने के कारण खाद्य मुद्रास्फीति में लगातार वृद्धि हुई, जिसमें एक या दो अच्छे मानसून से आसानी से कमी नहीं होने वाली है।

ऊर्जा के मामले की ही तरह अक्सर यह बात भी कही जाती है कि मौद्रिक नीति सीधे खाद्य मुद्रास्फीति को कम नहीं कर सकती इसलिए इस इस संबंध में मौद्रिक नीति की कोई भूमिका नहीं है। इस पर प्रतिक्रिया ऊर्जा के मामले की तरह ही है।

जब अर्थव्यवस्था गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर के स्तर पर हो या उसके करीब हो और खाद्य मूल्य बढ़ रहे हों तब वह मजदूरी में वृद्धि के जरिए कार्य करती है और अंततः सभी स्तरों पर मूल्य वृद्धि होती है। ऊर्जा के मामले की ही तरह लगातार उच्च स्तर पर बने हुए एवं बढ़ते हुए खाद्य मूल्य का गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर पर विपरीत असर पड़ता है और इसलिए मौद्रिक नीति का हस्तक्षेप आवश्यक होता है।

उपसंहार

इस तथ्य को रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है कि नीति निर्धारण के लिए केंद्रीय बैंक ही एक ऐसी संस्था है जिसके पास मूल्य स्थिरता या मुद्रास्फीति प्रबंधन के लिए स्पष्ट अधिदेश है।

इसलिए यह चाहे जिस भी लक्ष्य का अनुसरण करे वे सभी इस प्राथमिक अधिदेश के अनुरूप होने चाहिए। यह विशिष्ट स्थिति मौद्रिक नीति के भविष्य की दिशा निर्धारित करती रहेगी।

तथापि, नीति निर्धारक अन्य संस्थाएं भी अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रास्फीति को प्रभावित कर सकती हैं। जैसा कि ऊपर खाद्य के संदर्भ में विशेष रूप से वर्णन किया गया है और यह अन्य संभावित बाधाओं के मामले में भी प्रासंगिक है, अतिरिक्त आपूर्ति को बढ़ाने वाले नीतिगत उपाय गैर-मुद्रास्फीतिकारी वृद्धि दर को बढ़ाने में मदद करेंगे।

इसका अर्थ यह हुआ कि कोई भी निर्धारित मुद्रास्फीति अब तेज वृद्धि के संगत होगी या विकल्पतः कोई भी निर्धारित वृद्धि दर कम मुद्रास्फीति दर के संगत होगी। इस लिहाज से मुद्रा नीति का रुझान सार्वजनिक और निजी निवेश गतिविधियों एवं अन्य नीतिगत कदमों से तथा महत्त्वपूर्ण रूप से पण्य मूल्यों की प्रवृत्ति सहित वैश्विक गतिविधियों से भी निर्धारित होगा। इनका गैर स्फीतिकारी वृद्धि दर के निर्धारण पर भी प्रभाव पड़ेगा।

अंततः संकट के बाद नए विचारणीय मुद्दे प्रकट हुए हैं जिनके विस्तार में जाने की यहां गुंजाइश नहीं है।

संभवतः इन सभी मुद्दों में सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा वित्तीय स्थिरता का है। साथ ही, व्यापक रूप में विनियामक अधिदेश के साथ तथा अधिक संकीर्ण रूप में केंद्रीय बैंक के अधिदेश के साथ इसको जोड़ने का भी मुद्दा है।

यह एक उभरती हुई वैश्विक परिचर्चा है और मौद्रिक नीति पर इसके सीधे असर के बारे में अभी कुछ कहना बहुत जल्दबाजी होगी, किंतु निश्चित रूप से यह ऐसा विषय है जिस पर नजर रखनी होगी।